कार्यशील महिलायें एवं सामाजिक परिवर्तन

डॉ0 मालती
एसोसिएट प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग
एन0 ए0 एस0 कॉलेज, मेरठ, उ.प्र.

सारांशिका

महिला संगठन एवं कल्याण हेतु नागरिक स्वतन्त्रता, समानता एवं न्याय की प्रभावी भूमिका के विषय में चेतना जागृत हुई। महिला की स्थिति को द्वितीय स्तर की नागरिकता से मुक्त करने के सभी प्रयास इसी दिशा में उद्यत थे। इन प्रयासों ने प्रमाणित किया कि कृत्रिम संशय आरोपण के बावजूद महिलाओं ने साहस एवं धैर्य का परिचय दिया एवं राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा में स्वायत अस्तित्व हेतु उनक प्रयासों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। एक ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध सशक्त राष्ट्रीय संगठन, एवं दूसरी ओर महिलाओं के स्वाभिमान एवं अधिकार रक्षण हेतु, राष्ट्रीय प्रयासों में महिला की भूमिका की स्वीकृति स्वयं ही परिवर्तित दृष्टिकोण की परिचायक थी। स्वाधीनता संघर्ष में अपवाद रहित राष्ट्रीय प्रयास हेतु महिला और पुरुष, दोनों सामान्य उद्देश्य से अनुप्राणित माने गये।

मुख्य शब्दः साहस, धैर्य, सशक्त संगठन, सामाजिक परिवर्तन, अधिकार रक्षण

प्रस्तावनाः सार– स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय महिलाओं में सम्बल, साहस और आत्मविश्वास की आवश्यकता को स्वीकारा । उनका विश्वास था कि महिला में सुशुप्त शान्ति और संकल्प है एवं न्यायोचित अवसरों की प्राप्ति से वह अपनी समस्याओं का समाधान खोजने में सक्षम है। महिला को प्रत्येक काल में असहाय,निर्बल एवं पराश्रित सिद्ध करने के स्थान पर समाज का दायित्व है कि वह महिला को स्वाभाविक विकास के वे सभी अवसर प्रदान करे जो नारी का अधिकार है।

महिला की क्षमता, भागीदारी, स्थिति एवं आकांक्षाओं का अध्ययन एकाकी रूप में सम्भव नहीं है। भारत एवं विश्व के अनेक भागों में महिला जागृति, महिला स्वतन्त्रता एवं महिला समानता का आन्दोलन नवगति एवं दिशा में व्यक्त हो रहा है। आधुनिक कार्यशील महिला परम्परागत दासता को तोड़ वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास में अपनी सार्थकता स्थापित करने का प्रयास कर रही हैं। अस्मिता के प्रति पहले से अधिक सर्तकता व्यक्त की है। महिलाओं के प्रति पुरुष प्रधान निश्चयन कि वे केवल करुणा, दया एवं भावना की प्रतिमूर्ति है, एक–पक्षीय ही है क्योंकि इसमें महिला क्षमता तथा सम्भावनाओं को अनदेखा किया गया है। पुरुष एकाकी रूप में सामाजिक सम्पूर्णता का प्रहरी नहीं हो सकता क्योंकि महिला की भूमिका निर्वाह द्वारा ही परिपूरक वास्तविकता का सम्वर्धन सम्भव है। समाज को–सम्भागों एवं अंशों में नहीं देखा जा सकता। यदि समाज संपूर्णता एवं समग्रता में ही मान्य है तो पुरुष एवं महिला की 'भूमिका–परिपूरकता' अविच्छिन्न है। प्रकृति ने पुरुष एवं महिला को शारीरिक एवं भावात्मक दृष्टि से चाहे भिन्न अस्मिता प्रदान की हो किन्तु इस आधार पर समानता एवं क्षमता, न्याय एवं अवसर सम्बन्धी पूर्वाग्रहों का आरोपण निरर्थक है। महिला को ममता, करुणा, नैतिकता, धैर्य, क्षमा एवं दया की प्रतिमूर्ति बना कर इतिहास में सदैव छला जाता रहा है।

विगत इतिहास में उपर्युक्त सद्गुणों के समीकरण के बावजूद, महिला वर्ग को वेदना, महिला प्रताड़ना, उपेक्षा तथा अपमान भोगना पड़ा। पुरुष ने महिला को 'मौन व्यक्तित्व' प्रदान कर अपनी कृत्रिम गरिमा को स्थायी बनाने के प्रयास जारी रखे। सांस्कृतिक–पारम्परिक अंलकारों से विभूषित की गई किन्तु उसकी सामाजिक स्थिति में पराभव स्पष्ट होता गया। पुरुष रचित रीति–नीति में महिला अर्द्धांगिनी एवं अनुगामिनी बनकर रह गई। उसकी शास्त्रीय स्थिति परिवार की परिधि से समीकृत की गई तथा सामाजिक गत्यात्मकता एवं संतुलन पर आघात होते रहे। पश्चिम में औद्योगीकरण, वैज्ञानिक विकास एवं वैचारिक क्रान्ति के फलस्वरूप महिला जागृति के प्रति चेतना का उदय स्वाभाविक था। पूर्व में इस विरोधवाद एवं सकारात्मक कथन की स्थापना में कतिपय विलम्ब हुआ। किन्तु प्रश्नवाचक एवं संशय के जन्म के परिणामस्वरूप पश्चिम एवं पूर्व के अन्तर मिटने लगे एवं जहां लोकतंत्र, अधिकार, न्याय, समानता एवं अवसर के मुद्दे प्रस्तुत किये गये, समाज की समग्रता से महिला को अपवाद रूप में पृथक रखना असंभव हो गया।

महिला उत्थान के स्वर अर्थपूर्ण एवं स्थायी बनें इस हेतु केवल पुरुष अधिकारवाद का विरोध ही महिला मुक्ति में सहायक नहीं हो सकता। समस्या के गम्भीर एवं विकृत इतिहास तथा पृष्ठभूमि को संतुलित दृष्टि से परखकर ही पश्चिम के 'वीमेन्स लिबरेशन' –महिलामुक्ति) अभियान को भारतीय संदर्भ में व्यावहारिक बनाया जा सकता है। मुक्ति किसी भी स्थिति में उच्छृंखलता नहीं हो सकती। महिला स्वतन्त्रता से तात्पर्य पुरुष विरोधी होना नहीं है। महिला वर्ग की हीन दशा एवं अवनति का मूल पुरुष अधिकारवाद के साथ ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था एवं महिला वर्ग की निहित शिथिलता में व्यक्त है। महिला मुक्ति के भारतीय संदर्भ में इस वास्तविकता को अनदेखा नहीं किया जा सकता। महिला की प्रतिद्वंद्विता पुरुष से नहीं वरन् उन सभी आरोपित विकृतियों से है जो महिला वर्ग को हेय–स्तर पर स्थापित करने में ही विजय–कल्पना

की परिपूर्ति मानी जाती है। वृहत् संदर्भ में सामाजिक–आर्थिक सम्बन्धों एवं प्रक्रिया को महिला वर्ग की स्थिति से भिन्न नहीं माना जा सकता।

राष्ट्रीय आन्दोलन एवं महिलायें–

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय महिलाओं में सम्बल, साहस और आत्मविश्वास की आवश्यकता को स्वीकारा । उनका विश्वास था कि महिला में सुशुप्त शान्ति और संकल्प है एवं न्यायोचित अवसरों की प्राप्ति से वह अपनी समस्याओं का समाधान खोजने में सक्षम है। महिला को प्रत्येक काल में असहाय, निर्बल एवं पराश्रित सिद्ध करने के स्थान पर समाज का दायित्व है कि वह महिला को स्वाभाविक विकास के वे सभी अवसर प्रदान करे जो नारी का अधिकार है। विवेकानन्द के चिन्तन एवं कर्मण्यवाद की समग्रता के परिप्रेक्ष्य में महिला एवं पुरुष की समानता, न केवल सामाजिक, आर्थिक, नागरिक प्राथमिकताओं की परिणति है बल्कि मानवीय एवं नैतिक कथन है। समाज सुधार एवं एकीकरण के चिन्तन एवं कर्मण्यता में इसी कारण महिला एवं पुरुष के आरोपित भेद को विवेकानन्द ने अर्थहीन माना।

इसी प्रकार, अन्य प्रसिद्ध समाज सुधारक स्वामी दयानन्द ने भी महिला समता एवं न्याय को स्वीकारा। वेदों पर आधारित तर्क में वे सामाजिक व्यवस्था को शाश्वत मानते है। उनके अनुसार नारी को अज्ञान, अन्धविश्वास, अन्याय एवं विसंगतियों के आरोपण से मुक्त करने पर ही सामाजिक न्याय सम्भव है। सामाजिक धर्म एवं संकल्प पूर्ति हेतु, दयानन्द सरस्वती ने महिलाओं के पुनः उत्थान में ही सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को व्यक्त माना।

समाज सुधार प्रयासों में महिला पुनः उत्थान एवं जागृति की महत्ता राजनीतिक प्रयासों में भी देखी गई। राष्ट्रीय संदर्भ में संगठन एकता एवं समग्रता की महत्ता को स्वीकार कर स्वतन्त्रता के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य हेतु, सामाजिक न्याय को आधारशिला माना गया। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास एवं प्रक्रिया से महिला का प्रभावित होना स्वाभाविक था। शनैः शनैः महिला की सीमित भूमिका एवं स्थापित संकुचितता को तोड़ने के प्रयास किये गये। अधिकाधिक राष्ट्रीय नेताओं ने महिला की राष्ट्रीय भागीदारी का आह्वान किया। प्रारम्भ में सीमित मात्रा में भारतीय महिला लोक जीवन की चुनौतियों से जूझने की दिशा में अग्रसर हुई। किन्तु महिला की पारिवारिक स्थिति में मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। महिला की स्थिति एवं अधिकारों के विषय में सामाजिक दृष्टि में भी प्रभावी परिवर्तन नही दीख पड़े। किन्तु, इस दिशा में प्रारम्भ तो अवश्य ही हो चुका था। इसी प्रारम्भ में महिला स्थिति में आमूल परिवर्तन की संभावनायें निहित थी। इसके कतिपय प्रमाण भी अभिव्यक्त हुए। महिलाएं राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेस की सक्रिय सदस्य के रूप में संगठित हुई, यद्यपि इस माध्यम से महिला परिवार में पुरुष के अधिकारवाद को पुर्णतः समाप्त करने में तो असफल रही किन्तु समाज की विगत दृष्टि को चुनौती के प्रमाण परिलक्षित हुए हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन में महिला भागीदारी को तीन प्रमुख स्तरों पर इंगित किया गया।

प्रथमः वे सामान्य महिलाएं जिन्होंने सत्याग्रह में हिस्सा लिया, किन्तु जो किसी भी राजनीतिक–सामाजिक संगठन से औपचारिक रूप से सम्बन्धित नहीं थी।

द्वितीयः ये महिलाएं जो गाँधीवादी राजनीति से प्रभावित हो समाज सुधार के ध्येय से सक्रिय हुई। किन्तु, इनकी भागीदारी, कार्य एवं क्षेत्र की दृष्टि से सीमित थी।

तृतीयः वे कुलीन महिलाएं जिनके परिवार राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रतिबद्ध थे एवं फलतः ऐसी महिलाओं का सार्वजनिक राजनीति में प्रवेश एवं भूमिका सरल एवं स्वाभाविक माने गये।

भारत में महिला स्वतन्त्रता आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन की राजनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा। परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में महिला द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयास स्वयं चुनौतीपूर्ण कार्य था। गांधी ने इस सन्दर्भ में अनेक दूरगामी प्रयास किये। गांधी ने सत्याग्रह में नारी को केवल इस कारण ही आमंत्रित नहीं किया कि वे नारी को पुरुष के समान मानते थे, अपितु इस कारण भी कि वे अनेक क्षेत्रों में नारी को पुरुष से श्रेष्ठ समझते थे। गांधी के अनुसार संघर्ष में धैर्य, सहिष्णुता एवं कष्ट सहन क्षमता, ऐसे गुण थे, जिनके कारण नारी सत्याग्रह आन्दोलन को पुरुषों से अधिक सफलतापूर्वक संचालित कर सकती थी। गांधी के अनुसार महिला को शिथिल एवं अबला कहना पुरुष की विकृत दृष्टि एवं परिसीमितता का परिचय है। वे मानते थे कि नारी मे पुरुष से अधिक नैतिक शक्ति है जो सभी शक्तियों से अधिक महत्वपूर्ण है

गांधी मनुस्मृति के इस नियम को कि महिला पुरुष के अधीन है, अतः उसे सीमित स्वतन्त्रता दी जाए, उचित नहीं मानते। भारत के प्राचीन साहित्य में महिला को सम्माननीय सम्बोधन प्राप्त है। इससे स्पष्ट है कि प्रारंभिक काल में महिला–पुरुष असमानता को अस्वीकारा गया। कालान्तर में अवश्य ही महिला के प्रति दृष्टिकोण में अन्तर देखे गये जिनके फलस्वरूप सामाजिक विषमताओं को बल मिला। महिला को वासना का पात्र न मानकर, समाज में अपेक्षित प्रतिष्ठा प्रदान कराने में गांधीजी के प्रयास महत्वपूर्ण एव प्रभावशाली रहे। उन्होंने महिला के प्रति अविश्वास एवं अन्यायपूर्ण सामाजिक दम्भ के विरोध में महिला की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने का संकल्प लिया।

गांधीजी ने बाल–विवाह, दहेज, पर्दा एवं सती का विरोध किया। वे विधवा पुनः विवाह के पक्षधर थे। गांधी परिचित थे कि वैधानिक प्रारूप की व्यावहारिक वैधता भी मूलतः सामाजिक स्वीकृति एवं सहमति में निहित है। अतः केवल मात्र शासकीय प्रयासों द्वारा महिला स्थिति में सुधार पर्याप्त नहीं हो सकते। महिला समाज की भूमिका एवं संगठन यदि स्पष्ट न हों तो कोई प्रयास प्रभावी नहीं बनेगा। अतः सरोजनी नायडू, कमला नेहरू, कस्तूरबा, अमृत कौर, प्रभावती अनुसूया, मीरा बहिन, उन महिलाओं में थी जो गांधी के संदेश को समझकर औपचारिक सामाजिक आवरण को चुनौती देकर अग्रसर हुई। इस प्रक्रिया ने भारत में ही नहीं, वरन दक्षिण एशिया एवं अफ्रीका में भी महिला चेतना को नवीन दिशा प्रदान की। महिला के सम्मुख आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक अस्तित्व के लिए संघर्ष की अर्थपूर्णता परिलक्षित हुई।

इस काल की विशेषता रही कि राजनीति और सामाजिक सुधार समान्तर रुप से चले। राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख राजनीतिक नेता,

सामाजिक सुधार की अनिवार्यता से सहमत थे। वे सामाजिक और राजनीतिक सुधारों को पूरक मानते थे। गांधी द्वारा निर्देशित समाज सुधार आन्दोलन ने जहां निर्धन वर्ग की महिलाओं को प्रभावित किया, वहीं कुलीन–धनिक वर्ग तथा परम्परागत मूल्यों में विश्वास रखने वाले वर्ग की महिलाओं ने अधिकाधिक मात्रा में राष्ट्रीय धारा में प्रवेश करने की चुनौति को स्वीकारा।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में जब–जब पुरुष नेतृत्व ब्रिटिश सरकार द्वारा बंदी बना लिया गया तो आन्दोलन का दिशा निर्देशन का कार्य महिलाओं ने निभाया। महिलाओं ने युद्ध समिति का प्रभावी संचालन किया एवं राष्ट्रीय आन्दोलन की गति एवं दिशा को बनाये रखा। अवन्तिका बाई गोखले, श्रीमती कामदार, शान्ता बाई वेंगसरकर, दुर्गा बाई, कमल्लमा, सत्यावती एवं कृष्णा बाई पंजीकर, कुछ प्रमुख महिलाएं है जिन्होंने अपनी क्षमता और आत्मविश्वास द्वारा सिद्ध कर दिया कि महिलाएं किसी भी दृष्टि से निर्बल नहीं है। आगामी वर्षो में राजकुमारी अमृत कौर, अचाम्मा मथाई और धनवन्ती रमा राय की भूमिका महत्वपूर्ण रही। गांधी ने स्पष्ट किया कि महिलाओं ने प्रमाणित कर दिया, यदि प्रमाण की आवश्यकता है, कि ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहां महिला, पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य नहीं कर सकती

स्मरणीय है कि गांधी के आन्दोलन में मुस्लिम महिलाओं का सहयोग एवं दृष्टिकोण उतना उत्साही नहीं रहा जितना अन्य महिलाओं का। इसका एक प्रमुख कारण जिन्ना के नेतृत्व में लीग की स्थापना थी जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय राजनीति दो भिन्न खेमों में विभाजित हो गई। इस सन्दर्भ में फ़ातिमा वजीर हसन का मत है कि राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा, राजनीति और सामाजिक क्षेत्र में मुस्लिम महिलाओं की भूमिका सीमित रही है। उच्च एवं मध्यम वर्गीय मुस्लिम परिवार आज भी अपने परंपरागत धार्मिक मूल्यों का परित्याग करने को तैयार नहीं थे। मुस्लिम परिवारों पर पर्दा–प्रथा का कुप्रभाव भी बना रहा।

अनेक बाधाओं के बावजूद, शनैः शनैः महिलाओं की भूमिका राष्ट्रीय धारा में सक्रिय होती गई। प्रारम्भ में महिला सम्मेलनों को स्थाई आधार प्राप्त नहीं था। कांग्रेस की महिला शाखा के गठन के पश्चात् इस स्थिति में परिवर्तन आया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में महिला संगठनों की स्थापना के प्रयासों में प्रगति हुई। 1884 में, महाराष्ट्र और गुजरात में अनेक संगठनों की स्थापना की गई। इनका प्रमुख कार्य महिला शिक्षण, तथा निर्धन महिलाओं के लिए कुटीर उद्योगों में शिक्षण देना था।

राष्ट्रीय स्तर पर,ै विमेन्स इंडियन एसोसिएशनै की स्थापना मद्रास में 1917 में की गई। यह महिला कल्याण हेतु प्रथम राष्ट्रीय जन संगठन था। प्रारम्भ में इस संगठन का कार्यक्षेत्र शिक्षा और समाज सुधार तक ही सीमित था, किन्तु कालान्तर में महिलाओं के पक्ष में अनेक कानूनी सुधारों की मांग को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। महिला मताधिकार की मांग को ब्रिटिश सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया गया। सरकार का दृष्टिकोण असहयोगी बना रहा। उद्देश्य प्राप्ति में चाहे विलम्ब हुआ हो किन्तु संगठन की भूमिका सदैव सक्रिय बनी रही।

प्रथम विश्व युद्ध काल में व्यवस्था और शान्ति के कार्य हेतु बम्बई में नेशनल काउंसिल ऑफ विमेन की स्थापना की गई। इस संस्था ने भी महिला शिक्षा हेतु अभियान प्रारम्भ किया। अक्टूबर 1926 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन आयोजित किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य महिला शिक्षा, सामाजिक सेवा, व्यक्तिगत कानून में सुधार तथा स्वास्थ्य एवं रोजगार की दिशा में शासन द्वारा जन कल्याणकारी नीतियों की पहल करना था। सरोजनी नायडू के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार से व्यवस्थापिका और प्रशासनिक संस्थाओं में के महिला प्रतिनिधित्व की मांग की गई।

1887 में राष्ट्रीय कांग्रेस की महिला शाखा का समारम्भ इंडियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस के तत्वावधान में किया गया। राजनीतिक अधिकार की प्राप्ति हेतु सामाजिक अधिकार की महत्ता को स्वीकारा गया।

उपर्युक्त प्रयासों से महिला संगठन एवं कल्याण हेतु नागरिक स्वतन्त्रता, समानता एवं न्याय की प्रभावी भूमिका के विषय में चेतना जागृत हुई। महिला की स्थिति को द्वितीय स्तर की नागरिकता से मुक्त करने के सभी प्रयास इसी दिशा में उद्यत थे। इन प्रयासों ने प्रमाणित किया कि कृत्रिम संशय आरोपण के बावजूद महिलाओं ने साहस एवं धैर्य का परिचय दिया एवं राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा में स्वायत अस्तित्व हेतु उनक प्रयासों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। एक ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध सशक्त राष्ट्रीय संगठन, एवं दूसरी ओर महिलाओं के स्वाभिमान एवं अधिकार रक्षण हेतु, राष्ट्रीय प्रयासों में महिला की भूमिका की स्वीकृति स्वयं ही परिवर्तित दृष्टिकोण की परिचायक थी।

स्वाधीनता संघर्ष में अपवाद रहित राष्ट्रीय प्रयास हेतु महिला और पुरुष, दोनों सामान्य उद्देश्य से अनुप्राणित माने गये। जितना महत्व राजनीतिक आन्दोलन को दिया गया उसी अनुपात में सामाजिक न्याय के स्वर को भी स्वाभाविक अनिवार्यता माना गया। राजनीतिक उद्देश्य एवं रीतिनीति के सकारात्मक आधारों का सामाजिक क्षेत्र पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था एवं इस प्रक्रिया के दूरगामी परिप्रेक्ष्य की महत्ता स्वीकार्य है।

दूसरी ओर, विश्व के अन्य क्षेत्रों में भी राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के प्रयास किये जा रहे थे एवं महिला भागीदारी की बढ़ती भूमिका भी व्यक्त हुई। महिला और पुरुष सहभागिता एवं सहयोग में व्यापक सामाजिक संगठन एवं परिवर्तन की आधारशिला को स्वीकारा गया। राष्ट्रवाद एवं स्वायत्तता के स्वरों ने अनेक देशों में महत्वपूर्ण परिवर्तन की दिशा को इंगित किया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में चाहे मूल सामाजिक–सांस्कृतिक अपेक्षाय तत्काल साकार न हुई हों, किन्तु महिला वर्ग को स्वतन्त्रता, समानता एवं न्याय से वंचित रखना असम्भव था। इसके अनेक कारण थे। स्वशासन एवं स्वतन्त्रता, स्वयं अपरिमित वरदानों को स्थापित करते हैं। शिक्षा प्रसार विचार दर्शन की ग्राहयता, विदेशों में नारी समानता अभियान विधि–विधान में समुचित गत्यात्मकता, रोजगार ने नवीन अवसर औद्योगिक समाज के परिवर्तित स्वरुप एवं आर्थिक आग्रहों के परिणामस्वरुप, महिला वर्ग की दृष्टि, विचार, कार्य एवं भूमिका में दूरगामी परिवर्तन स्वाभाविक रूप से व्यक्त हुए। इस प्रक्रिया में तत्काल उपलब्धियों की इतनी महत्ता नहीं थी जितनी ज्ञातव्यता, चेतना एवं प्रयासों की। दूसरी ओर, यह भी सामयिक

वास्तविकता है कि शहरी महिला की तुलना में ग्रामीण महिला को परिवर्तन एवं प्रगति के सीमित अवसर ही मिल पाये हैं।

स्वतन्त्र भारत में रोजगार के अवसरों की बढ़ोतरी, महिला योग्यता तथा कौशल की स्वीकार्यता, एवं शैक्षिक अवसरों की उपलब्धि के फलस्वरुप, महिला वर्ग को नवीन अवसर अवश्य ही उपलब्ध हुए है। महिलाओं के प्रति सामाजिक दृष्टि में परिवर्तन के साथ ही उनको अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक अवसर भी उपलब्ध हुए है। इस प्रक्रिया के दूरगामी प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता। वृहत् सामाजिक परिवर्तन की असीमित प्रक्रिया में इस आशय एवं आकांक्षा को अव्यावहारिक नहीं माना जा सकता।

स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय महिला की स्थति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है। वर्तमान में महिला के व्यक्तित्व की पहचान के प्रति चेष्टा स्पष्ट है। महिला अस्मिता के प्रति अधिक सतर्कता देखी जा सकती है। महिला की दोहरी भूमिका के विषय में तो किसी भी स्थिति में मूल परिवर्तन नहीं हुए हैं। महिला के पारिवारिक एवं कार्य स्थल के दायित्वों का निर्वाह स्वाभाविक अपेक्षा है। दूसरी ओर, जो मूलतः गृहणीयां है वे भी अतिरिक्त कार्यों में सहभागी रहती है। दोनों ही स्थितियों में महिला की भूमिका एवं कार्य, गृह परिवार एवं गृह परिवार से बाहर के दायित्वों के निर्वाह से सम्बद्ध है।

ऐसे अनेक उदाहरण है कि क्षमता एवं योग्यता के बावजूद, महिला कर्मचारी को पुरुष कर्मचारी की तुलना में, समान कार्य के लिए भी कम वेतन मिलता है। महिला को मूलतः न्यून क्षमतावान माना जाता है। महिलाओं की अपेक्षा पुरुष कर्मियों की भर्ती को प्राथमिकता दी जाती है। विवाहित महिलाओं को अनेक बाध्यकारिताओं से पीड़ित माना जाता है। कार्यस्थलों की स्थिति के वास्तविक वातावरण को इस प्रकार के पूर्वाग्रहों से प्रभावित देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में एक अन्य पक्ष को भी इंगित करना अपेक्षित है। भारतीय सामाजिक दृष्टि में महिला को सम्पूर्ण स्वायत्तता की स्वीकृति में संकोच तो है ही, महिला द्वारा कार्यशीलता के प्रयासों को "अधिकार" की अपेक्षा "आवश्यकता" मात्र माना जाता है। अर्थात, आर्थिक दबावों के कारण मजबूरी में दी गई छूट को अधिक समर्थन दिया जाता है जिसके फलस्वरूप महिला परिवार को आर्थिक सहायता प्रदान कर सके एवं पुरुष के प्रयासों को मात्रात्मक सम्बल दे सके। किन्तु कार्यशील स्थिति एवं भूमिका निर्वाह के बावजूद महिला को पुरुष के समान अधिकारों का भागीदार मानने में संशय एवं प्रतिरोध बना हुआ है।

कार्यशील महिला एवं भूमिकाएं–

कार्यशील महिलाओं की दो भूमिकायें एवं रूप हैः सार्वजनिक रुप, अर्थात् कार्यशील महिला, के स्तर पर अध्यापिका, चिकित्सक, प्रशासक, वकील, श्रमिक, इत्यादि । इस स्थिति में महिला आर्थिक दृष्टि से पारिवारिक स्तर में बढ़ोतरी करती है। अनेक कार्यस्थलों पर महिला के कौशल, सत्ता एवं निर्णायकता प्रमाणित है, सम्मान एवं गरिमा भी उसे प्राप्त दूसरी ओर, वैयक्तिक एवं पारिवारिक स्तर पर, उसकी अस्मिता की व्याख्या में पुरुष प्राधान्य पूर्वाग्रह हैं, जैसे, वह पिता की पुत्री, भाई की बहन, पति की पत्नी और पुत्र की माँ है। उसके अस्तित्व एवं व्यक्तित्व की कोई स्वायत पहचान नहीं है। इस क्षेत्र में वह अबला एवं पराश्रित है। सुरक्षा के नाम पर पुरुष से विलग्न उसका अस्तित्व अमान्य है। जब कार्यशील महिला पर भी इस प्रकार के पूर्वाग्रह हावी हो तो उसकी स्थिति अवश्य ही शोचनीय बन जाती है। कार्यशील महिला परिवार की सदस्या के रूप में कार्यस्थल के अधिकार एवं स्वायत्ता से वंचित होकर नितान्नत असहाय नारी मात्र बन जाती है अथवा, यह भी माना जा सकता है कि उसको इस स्तर से से वंचित कर दिया जाता है। मुक्त होने के अवसरो से वंचित कर दिया जाता है।

भारतीय कार्यशील महिलाओं के सम्मुख अन्य चुनौती भी है। एक ओर यदि वे शिक्षित है तो आधुनिकता की प्राथमिकताये उनको प्रेरित करती है यद्यपि पारम्परिक सामाजिक आग्रह उनकी दिशा एवं दृष्टि में गतिरोध प्रस्तुत करते हैं। यदि कार्यशील महिला शिक्षित नहीं भी है तो भी कार्य स्थल की अनिवार्यताओं से वह अछूती नहीं रह सकती किन्तु परिवार की पारम्परिक दृष्टि में मूलभूत परिवर्तन नहीं हो पाते। गृहिणी की भूमिका के पारम्परिक संदर्भ को अभी पूर्णरूप से अप्रभावी नहीं बनाया जा सका है। इस विरोधाभास में कार्यशील महिला की चुनौतियां यथास्थिति विद्यमान है। अनुभव एवं पर्यवेक्षण के आधार पर देखा जा सकता है कि अधिकतर कार्यशील महिलायें तनाव एवं गतिरोध पर नियन्त्रण पाने हेतु या तो अपनी स्वाभाविक स्वायतता के मूल्य पर समझौता करना अपेक्षित मानती है अथवा विरोधाभासी जीवन को स्वीकार कर लेती है।

शहरी कार्यशील महिलाओं में ऐसा वर्ग भी है जो आधुनिकता को पश्चिमीकरण का पर्याय मानकर ऐसी स्वतन्त्रता की पक्षधर बन जाती है जो स्वच्छन्दता के अधिक निकट है। इस प्रकार की महिला की दृष्टि एवं उद्देश्य किस सीमा तक सांस्कृतिक वांछनीयता के समकक्ष है, विवादास्पद बना रहेगा। भारतीय सामाजिक वास्तविकता में अधिकांश समर्थन वर्णित प्रथम दृष्टिकोण को दिया गया है। यदि पूंजीवादी व्यवस्था सम्पूर्ण रूप से स्थापित हो जाती है तो ऐसे समाजों में परम्परागत मूल्यों एवं नैतिकता को भी स्वाभाविक चुनौतियां दिया जाना सरल एवं स्वाभाविक हो जाता है। पश्चिम के समाजों में देखा गया कि चाहे वहां अन्य अनेक समस्याएं परिलक्षित होती हो किन्तु अपेक्षाकृत महिला समाज शनैः शनैः स्वतन्त्रता प्राप्ति की ओर अग्रसर हुआ है। नारी के अधिकारों में उत्तरोत्तर वृद्धि इसी प्रक्रिया को इंगित करती है। स्मरणीय है कि पूंजीवादी समाज में दो प्रमुख वर्ग अपने अस्तित्व हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। मार्क्स की शैली में ये हैः पूंजीपति वर्ग एवं सर्वहारा वर्ग ।

उसी तार्किक–युक्ति में निहित है कि वर्ग विशेष के हितों के रक्षण हेतु वर्ग संघर्ष भी आवश्यक है। ऐतिहासिक प्रमाण है कि इस प्रकार के समाज में स्त्री द्वारा पुरुष का, अथवा, पुरुष द्वारा स्त्री के शोषण का प्रश्न अपेक्षाकृत प्राथमिकता क्रम में उस स्तर पर परिलक्षित नहीं है जितना पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के स्वयं मिश्रित सामन्ती प्रवृत्तियों से पूरित संदर्भ में होता है। संक्रमण के इस प्रवाह में एशिया, अफ्रीका के अधिकतर राष्ट्रों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

चाहे प्रतिवाद में अनेक प्रकार के तर्क प्रस्तुत हो, मूलतः भारत की अर्थव्यवस्था पूंजीवादी प्रभावों से नहीं मानी जा सकती। परिणामस्वरुप, पारिवारिक आर्थिक आवश्यकताओं के बोझ को एक व्यक्ति द्वारा एकाकी रूप से वहन करना न उपादेय है एवं न ही सम्भव। बढ़ती हुई महंगाई में एक व्यक्ति की आय से गृहस्थी चलाना दुष्कर हो गया है। आर्थिक दबावों ने नारी के सम्मुख अनायास ही

ऐसी परिस्थितियां प्रस्तुत कर दी जो उसको परिवार एवं गृह की सीमाओं को पार कर न्यूनतम आर्थिक रक्षण हेतु कार्य–व्यवसाय तक लाने में सहायक बनी। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण मुद्दा यह भी है कि परिचित पुरुष–प्रधान समाज के पूर्वाग्रहों के बावजूद जब महिला ने परिवार की परिधि से बाहर आकर कार्य–व्यवसाय की प्रतियोगिता को स्वीकारा तो पुरुष अंह चाहे नियंत्रित होता दीखता हो किन्तु आर्थिक लाभ की अपेक्षा ने पुरुष के इस समझौते को भी अन्ततः पुरुष प्रधान परिवार के हित में ही माना। दूसरी ओर महिला की स्वाभाविक किन्तु विस्मृत एवं अस्वीकृत क्षमता के विषय में जो कृत्रिम संशय प्रकट किये जाते रहे, महिला द्वारा प्रतिभा एवं कौशल प्रामाणीकरण द्वारा उनकी अर्थहीनता को सिद्ध करना सम्भव हुआ। इस प्रकार की परिस्थिति में पुरुष– अहं को ठेस लगना स्वाभाविक था, ठीक उसी प्रकार जैसे सामाजिक पूर्वाग्रहों की विकृति एवं आधारहीन स्थितियों को चुनौती दी गई।

महिला मुक्ति एवं गरिमा पुनः स्थापना के आन्दोलनों के बावजूद, हमारे समय में प्रस्तुत संक्रमण की वास्तविकता है कि अनेक प्रकार की विरोधाभासयुक्त परिस्थितियां एवं प्रवृत्तियां सहअस्तित्व के वातावरण में प्रयुक्त है। पारम्परिक मूल्य एवं परिपाटियां, सामन्ती प्रवृत्तियां, पूंजीवादी आर्थिक संयन्त्र एवं उपभोक्ता के अनिवार्य कष्टों से प्रभावित महिला की भूमिका में सहसा दूरगामी परिवर्तन हुए। विगत स्थिति में महिला गृह एवं परिवार तक परिसीमित रखी गई। परिवर्तित संदर्भ में महिला पर गृह–परिवार तथा कार्य–स्थल, दोनों के दायित्वों को आरोपित कर दिया गया। शिक्षा प्रसार के परिणामस्वरूप महिला की जिज्ञासा, विवेक एवं आकांक्षाओं में क्षमता वृद्धि के अनुरूप सकारात्मक परिवर्तन अपेक्षित थे। किन्तु, संक्रमणकाल में उपलब्ध अवसरों का सम्पूर्ण लाभ अभी महिलाओं को मिलना शेष है। अतिरिक्त दायित्व वृद्धि के बावजूद आवश्यक नहीं है कि महिला के अधिकारों में भी समानुपात वृद्धि हुई हो। इस प्रकार की स्थिति में अंसतोष एवं व्यग्रता के बीज उपस्थित है। अतएव पारिवारिक एवं सामाजिक सहिष्णुता निर्वाह हेतु आवश्यक है कि पुरुष इस स्थिति को निरापद बनाने में पहल करे। महिला से अपेक्षा है कि वह कृत्रिम मुक्ति एवं स्वतन्त्रता के उपालम्भ से उठकर न्यायोचित व्यवस्था स्थापना में सहयोग दे।

उपर्युक्त वर्णित परिस्थितियों का एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम भी देखा गया। महिला द्वारा कार्य–स्थल के दायित्व निर्वाह के साथ आर्थिक स्वावलम्बन की दिशा में अग्रसर होना स्वाभाविक हो गया। समाजवेताओं की अपेक्षा है कि इस दिशा में महिला द्वारा किया गया प्रत्येक प्रयास दूरगामी महत्व से पूरित होगा। दूसरी और महिला हित रक्षण हेतु स्वयं महिला की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके दृढ़ निश्चयन एवं प्रतिबद्धता के आधार पर ही भावी सामाजिक व्यवस्था का स्वरूपण सम्भव है। महिला स्वावलम्बन का अधिकार, स्वाभिमान एवं सक्रिय प्रयासों की निरन्तरता से विलग्न नहीं माना जा सकता।

विकासशील समाजों में सामाजिक परिवर्तन की प्राथमिकता को स्वीकारा गया है। समग्र स्तर पर परिवर्तन के प्रभाव में चाहे राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना हो भी जाये तो भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणीय एवं प्रकायत्मिक विकास आवश्यक नहीं होता। इस अपेक्षित विकास की गति एवं दिशा में संशय बने रहते हैं। विकासशील समाज में स्वाभाविक विविधता, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के निर्णायक तत्व, संक्रमणकालीन चुनौतियों एवं परिवर्तन के प्रति निहित संशय एवं विरोध प्रवृति, कुछ ऐसे पहलू है जो किसी भी दृष्टि से अशक्त नहीं माने जा सकते। इसी कारण, पारम्परिक एवं मध्ययुगीन विचार, दृष्टिकोण एवं प्रतिक्रिया का निराकरण, विवेकजन्य समसामयिक निश्चयों की स्थापना के आधार पर ही होना अनिवार्य है। सामाजिक परिवर्तन की व्यापक एवं विश्वसनीय संरचना का निर्माण उसी स्थिति में सम्भव है। सामाजिक गत्यात्मकता एवं दृष्टि स्पष्टता के फलस्वरूप ही सामाजिक परिवर्तन की प्राथमिकताओं का निश्चयन सम्भव है।

निष्कर्षः आशय यह नहीं कि सामाजिक परिवर्तन के स्थापित आधारों का सर्वमान्य, सुसाध्य क्रियान्वयन सभी समाजों में व्यापक रूप से सम्भव अथवा अनिवार्य है। प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्ट स्थितियां होती है जो सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक–राजनीतिक एवं सामयिक वास्तविकताओं से संयुक्त होती हैं। इसी कारण, सामाजिक परिवर्तन, प्रवधारणा की व्यापकता को स्वीकारते हुए भी समाज की समग्र व्यवस्थात्मकता को प्राथमिक मानना उचित होगा।

भारत के व्यापक संदर्भ में, महिलाओं की स्थिति, भूमिका एवं अपेक्षाओं की महता को नगण्य नहीं माना जा सकता। स्वतन्त्रता के पश्चात् महिलाओं के शैक्षणिक विकास एवं व्यवस्थात्मक अवसरों के फलस्वरूप, अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में महिलाओं ने राष्ट्रीय जीवनधारा में भागीदारी के प्रमाण दिये हैं। सार्वजनिक एवं निजी संस्थानों में महिलाओं ने योग्यता के आधार पर अपने स्थान तथा उपलब्धियों को प्राप्त किया है। राजनीतिक, क्षेत्र में ही नहीं, राष्ट्रीय जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी महिलाओं की उपस्थिति एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

- गाँधी, एम. के. वीमेन एण्ड सोशल जस्टिस, अहमदाबाद, नवजीवन, 1949, पृ143
- नीरा देसाई, भारतीय समाज में नारी, दिल्ली मैकमिलन,1982, पृ:157
- ए.आर. देसाई, वीमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया, इकॉनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली, खण्ड20, सः23, जून 8, 1985, पृः 95
- विमला मेहता, एटीट्यूड ऑफ एजुकेडिट वीमेन टुवर्डस सोशल इशूज, दिल्ली, नेशनल प्रकाशन,1979, पृः 83
- प्रमिला कपूर, दी चेजिंग स्टेट्स ऑफ दी वर्किंग वुमेन इन इण्डिया, दिल्ली, विकास प्रकाशन,1970, पृः 27
- आशारानी वोहरा,1994, नारी शोषण आइने और आयाम, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ:15–17
- मौजम्मिल हसन,1993, भारतीय महिला एवं आधुनिकीकरण, कामन वेल्थ पब्लिशर्स, पृ:26–40
- सपना सचदेव, सुनीता मलहोत्रा,2006, वर्किंग वुमेन, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, पृ:21